तीर्थंकर महावीर का अनेकांत और स्याद्वाद दर्शन

आचार्य श्री तुलसी

दर्शन के क्षेत्र में ज्ञान और ज्ञेय की मीमांसा चिरकाल से होती रही है। आदर्शवादी और विज्ञानवादी दर्शन ज्ञेय की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार नहीं करते। वे केवल ज्ञान की ही सत्ता को मान्य करते हैं। अनेकान्त का मूल आधार यह है कि ज्ञान की भाँति ज्ञेय की भी स्वतंत्र सत्ता है। द्रव्य ज्ञान के द्वारा जाना जाता है, इसलिए वह ज्ञेय है। ज्ञेय चैतन्य के द्वारा जाना जाता है, इसलिए वह ज्ञान है। ज्ञेय और ज्ञान अन्योन्याश्रित नहीं हैं। ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान है और ज्ञान है, इसलिए ज्ञेय है। इस प्रकार यदि एक के होने पर दूसरे का होना सिद्ध हो तो ज्ञेय और ज्ञान दोनों की स्वतंत्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। द्रव्य का होना ज्ञान पर निर्भर नहीं है और ज्ञान का होना द्रव्य पर निर्भर नहीं है। इसलिए द्रव्य और ज्ञान दोनों स्वतंत्र हैं। ज्ञान के द्वारा द्रव्य जाना जाता है, इसलिए उनमें ज्ञेय और ज्ञान का संबंध है।

ज्ञेय अनन्त है और ज्ञान भी अनन्त है। अनन्त को अनन्त के द्वारा जाना जा सकता है। जानने का अगला पर्याय है कहना। अनन्त को जाना जा सकता है, कहा नहीं जा सकता। कहने की शक्ति बहुत सीमित है। जिसका ज्ञान अनावृत होता है, वह भी उतना ही कह सकता है, जितना कोई दूसरा कह सकता है। भाषा की क्षमता ही ऐसी है कि उसके द्वारा एक क्षण में एक साथ एक ही शब्द कहा जा सकता है। हमारे ज्ञान की क्षमता भी ऐसी है कि हम अनन्तधर्मा द्रव्य को नहीं जान सकते। हम अनन्त धर्मात्मक द्रव्य के एक धर्म को जानते हैं और एक ही धर्म का प्रतिपादन करते हैं। एक धर्म को जानना और एक धर्म को कहना नय है। यह अनेकान्त और स्याद्वाद का मौलिक स्वरूप है। उनका दूसरा स्वरूप है प्रमाण। अनन्तधर्मात्मक द्रव्य को जानना और उसका प्रतिपादन करना प्रमाण है। हम अनन्तधर्मा द्रव्य को किसी एक धर्म के माध्यम से जानते हैं। इसमें मुख्य और गौण दो दृष्टिकोण होते हैं। द्रव्य के अनन्त धर्मों में से कोई एक धर्म मुख्य हो जाता है और शेष धर्म गौण। नय हमारी वह ज्ञान पद्धति है, जिससे हम केवल धर्म को जानते हैं, धर्मों को नहीं जानते। प्रमाण हमारी वह ज्ञान पद्धति है, जिससे हम एक धर्म के माध्यम से समग्र धर्मी को जानते हैं। हम अँधेरे में बैठे हैं। कोई आदमी गुलाब के फूल ले आता है। हम नहीं देख पाते कि उसके पास क्या है? पर सुगंध से पता चल जाता है कि उसके पास गुलाब के फूल हैं। गुलाब के फूलों में केवल सुगंध ही नहीं है। उनमें रंग भी है, स्पर्श भी है और भी अनेक धर्म है। यदि प्रकाश होता तो हम उन्हें आंखों से देखकर जान लेते। अनेक धर्मों में से जो भी धर्म मुख्य होकर हमारे सामने आता है, वही उसके आधारभूत द्रव्य को जानने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का माध्यम बन जाता है। इस ज्ञान-पद्धति में द्रव्य और धर्म की अभिन्नता का बोध बना रहता है। यह प्रमाणात्मक अनेकान्त है। द्रव्य और धर्म या पर्याय सर्वथा अभिन्न नहीं है। उनकी अभिन्नता एक अपेक्षा या एक दृष्टिकोण से सिद्ध है। इस अपेक्षा के सूत्र को ध्यान में रखकर धर्मी और धर्म की अभिन्नता को स्वीकार करने वाली ज्ञान-पद्धति का नाम अनेकान्त है। एकान्त ज्ञान से हम धर्मी और धर्म की अभिन्नता को स्वीकार नहीं कर सकते। धर्मी एक द्रव्य है और धर्म उसमें होने वाले पर्याय हैं, वे दोनों अभिन्न नहीं हो सकते। अनन्त धर्मात्मक द्रव्य का किसी एक धर्म के माध्यम से प्रतिपादन करना स्याद्वाद (या प्रमाण वाक्य) हैं।

ज्ञान पद्धति अनेकान्त है और प्रतिपादन पद्धति स्याद्वाद। अनेकान्त के दो रूप हैं—प्रमाण और नय। प्रतिपादन की दो पद्धतियाँ हैं—समग्र द्रव्य के प्रतिपादन का नाम स्याद्वाद हैं और एक धर्म के प्रतिपादन का नाम नय।

वस्तु के जितने धर्म होते हैं, उतने ही नय होते हैं। जितने नय होते हैं, उतने ही वचन के प्रकार हो सकते हैं। किन्तु कहा उतना ही जाता है, जितना कालमान होता है।[1] अनेकान्त का पहला फलित है अनाग्रह, सत्य के प्रतिपादन की अक्षमता का बोध। सब लोगों में सत्य (या द्रव्य) के समग्र रूप को जानने की क्षमता नहीं होती। हम इस बात को छोड़ भी दें। सत्य को जानने का अधिकार सब को है, सब उसे जान सकते हैं, यह मान कर चलें। फिर भी हम इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकते कि सत्य के समग्र रूप को कहने की क्षमता किसी में भी नही होती। इसलिए सत्य की सारी व्याख्या नय के आधार पर होती है। हम अखण्ड को खण्ड रूप में जानते हैं और खण्ड रूप में ही उसका प्रतिपादन करते हैं। अतः किसी खण्ड को जानकर उसे अखण्ड कहने का आग्रह हमें नहीं करना चाहिए। खण्ड का आग्रह न बने, इसीलिए भगवान महावीर ने सापेक्ष दृष्टि का सूत्र किया। सोना पीला हैं, यह सोने का एक धर्म है। उसमें और भी अनेक धर्म हैं। यह प्रत्यक्ष देखते हुए भी हमें नहीं कहना चाहिए कि सोना पीला ही है। पीला रंग व्यक्त है, इसलिए हमें सोना पीला दिखाई देता है। अव्यक्त में न जाने और क्या-क्या है? उसके सूक्ष्म रूप में प्रवेश किए बिना केवल स्थूल रूप के आधार पर हम कैसे कह सकते हैं कि सोना पीला ही है। क्या इससे व्यवहार का अतिक्रमण नहीं होगा? सोना जब प्रत्यक्षतः पीला दिखाई दे रहा है, हरा काला दिखाई नहीं दे रहा है, तब हमें क्यों नहीं कहना चाहिए कि सोना पीला ही है। व्यक्त पर्याय में सोना पीला ही है, यह हम कह सकते हैं, किन्तु त्रैकालिक और अव्यक्त पर्यायों को दृष्टि में रखते हुए हम नहीं कह सकते कि सोना पीला ही है। इसलिए सोना पीला ही है, यह निरूपण सापेक्ष हो सकता है, निरपेक्ष नहीं। सोने में विद्यमान अनेक धर्मों को दृष्टि में रखते हुए भी हम यह कह सकते हैं कि सोना पीला ही है। शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि सोने का पीला होना संदिग्ध नही है। कुछ लोग मानते हैं कि स्याद्वाद संदेहवाद है। किन्तु यह वास्तविकता नहीं है। संदेह अज्ञान की दशा में होता

---

1. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ४५०

   उवकोसयसुतणाणी वि जाणमाणो वि तेऽभिलप्पे वि।
   ण तरित सव्वे वोत्तुं ण पहुप्पति जेण कालो से॥

   —इह तानुत्कृष्टश्रुतो जाननोऽभिलाप्यानपि सर्वान् (न) भाषते, अनन्तत्वात्, परिमितत्वाच्चायुषः, क्रमवर्तिनीत्वाद् वाच इति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। हम जानते हैं कि सोना पीला है, किन्तु साथ-साथ यह भी जानते हैं कि वह केवल पीला ही नहीं है, कुछ और भी है। सापेक्षता की दृष्टि से हम कहते हैं सोना पीला है। सोना पीला है, यह कहना सदिग्ध नहीं है, व्यक्त पर्याय की दृष्टि से यह असंदिग्ध है, इसलिए स्याद्वाद की भाषा में हम कहते हैं कि सोना पीला ही है।

अनेकान्त में नय का स्थान प्रधान रहा है। आगमसाहित्य में प्रमाण की अपेक्षा नय का अधिक व्यापक प्रयोग मिलता है। न्यायशास्त्र के विकास के साथ प्रमाण की चर्चा प्रारम्भ होती है। प्राचीन साहित्य में पाँच ज्ञान उपलब्ध होते हैं। उनमें मति, अवधि, मन : पर्यव और केवल—ये चार ज्ञान स्वार्थ होते हैं। श्रुत ज्ञान स्वार्थ और परार्थ दोनों होता है। नय श्रुत ज्ञान के विकल्प हैं।[1] अन्य दार्शनिक प्रमाण को मानते थे पर नय का सिद्धान्त किसी भी दर्शन में निरूपित नहीं है। प्रमाण की चर्चा के प्रधान होने पर यह प्रश्न उठा कि नय प्रमाण है या अप्रमाण? यदि अप्रमाण है तो उससे कोई अर्थसिद्धि नहीं हो सकती। यदि वह प्रमाण है तो फिर प्रमाण और नय एक ही हो जाते हैं, दो नहीं रहते। जैन तार्किकों ने इसका समाधान प्रमाण और नय के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए दिया। उन्होंने कहा—ज्ञानात्मक नय न अप्रमाण है और न प्रमाण। वह प्रमाण का एक अंश है।[2] धर्मी में प्रवृत्त होनेवाला ज्ञान जैसे प्रमाण होता है, वैसे ही धर्म (एक पर्याय) में प्रवृत्त ज्ञान नय होता है। केवल प्रमाण को माननेवाले तार्किक इसीलिए एकान्तवादी हैं कि वे नय को नहीं मानते। अनेकान्त का मूल आधार नय है। द्रव्य के अनन्त धर्मों या पर्यायों को अनन्त दृष्टिकोणों से देखे बिना एकान्तिक आग्रह से मुक्ति नहीं मिल सकती। द्रव्य के अनन्त धर्मों में यदि अपेक्षा सूत्र न हो तो वे एक-दूसरे के प्रतिपक्ष में खड़े हो जाते हैं। नित्यता-अनित्यता के प्रतिपक्ष में खड़ी है और अनित्यता नित्यता के प्रतिपक्ष में। यह आमने-सामने खड़ी होने वाली सैनिक मनोवृत्ति को नय दृष्टि के द्वारा ही टाला जा सकता है।

द्रव्यार्थिक नय ध्रुव अंश का निरूपण करता है, इसलिए उसके मतानुसार द्रव्य नित्य है। पर्यायार्थिक नय परिवर्तन अंश का निरूपण करता है, इसलिए उसके मतानुसार पर्याय अनित्य है। यदि द्रव्य नित्य और पर्याय अनित्य हो तो वे एक-दूसरे के प्रतिपक्ष में खड़े हो सकते हैं। पर द्रव्यार्थिक नय इस अपेक्षा को नहीं भूलता कि पर्याय के बिना द्रव्य का कोई अस्तित्व नहीं है और पर्यायार्थिक नय इस बात को नहीं भूलता कि द्रव्य के बिना पर्याय का कोई अस्तित्व नहीं है। तब नित्यता और अनित्यता सापेक्ष हो जाती है। द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं हैं, इसलिए नित्य और अनित्य भी सर्वथा भिन्न नहीं हैं। वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। सापेक्षता के मूल सूत्र ये है—

1 द्रव्य अनन्त धर्मात्मक है।

---

1. प्रमाणनयतत्वालोकालंकार ७।७१४
   श्रुतार्थांशाश एवेह योऽभिप्रायः प्रवर्तते।
   इतरांशाप्रतिक्षेपी स नयः सुव्यवस्थितः॥
2. तत्वार्थश्लोकवार्तिक, पृ० १२३, श्लोक २१
   नाप्रमाणं प्रमाणं वा नयो ज्ञानात्मको मतः।
   स्यात्प्रमाणैकदेशस्तु सर्वथाप्यविरोधतः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2 द्रव्य में ध्रौव्य और परिवर्तनीय दोनों धर्म होते हैं। उन्हें कभी पृथक नहीं किया जा सकता।

3 ध्रौव्य और परिवर्तनीय धर्म अभिवक्त होते हुए भी अपने-अपने स्वभाव में रहते हैं, इसलिए द्रध्य की नित्यता और अनित्यता में कोई निरोध नहीं है।

4 अस्तित्व और नास्तित्व भी सापेक्ष हैं। वे एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

5 हम द्रव्य को एक धर्म के माध्यम से जानते हैं, समग्र द्रव्य को नहीं जान सकते।

6 हम एक क्षण में द्रव्य के एक ही धर्म का प्रतिपादन कर सकते हैं।

7 धर्मों की निरपेक्षता मानने से विरोध की प्रतीति होती है। सापेक्षता से विरोध का परिहार हो जाता है।

इन सूत्रों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेकान्त और स्याद्वाद का जितना दार्शनिक मूल्य है, उतना ही आध्यात्मिक और अहिंसात्मक मूल्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org